इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BHIE-144
भारत में इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इग्नू
जन जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BHIE-144

भारत में इतिहास लेखन की परम्पराएँ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विशेषज्ञ समिति

प्रो. स्वराज बासु
निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. ए. आर. खान
प्रोफेसर इतिहास (सेवानिवृत्त)
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. आभा सिंह
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. नजफ़ हैदर
सेंटर फ़ॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. रोहित वांचू
सेंट स्टीफ़ेंस कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

श्री अजय माहुरकर (*संयोजक*)
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक : प्रो. आभा सिंह

सामग्री, प्रारूप और संपादन : प्रो. आभा सिंह

हिन्दी संयोजक एवं परिष्कर : प्रो. आभा सिंह
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. अभिषेक आनंद
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण दल

इकाई सं.	इकाई लेखक	अनुवादक
1	डॉ. शुचि दयाल, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
2	डॉ. शुचि दयाल, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
3	डॉ. शुचि दयाल, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
4	डॉ. अभिषेक आनंद, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	डॉ. ऋचा सिंह बोकारो, झारखंड
5	डॉ. अभिषेक आनंद सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	डॉ. दीपक के. नायर इतिहास विभाग, आर. एन. ए. आर. महाविद्यालय ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार
6	डॉ. शोनालिका कौल, सैंटर फ़ॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़ जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
7	डॉ. एस. बी. दर्सना, पी. जी. एंड रिसर्च डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री होली क्रॉस कॉलेज, तिरूचिरापल्ली, तमिलनाडु	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
8	प्रो. टी. के. वेंकटसुब्रह्मण्यम, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
9	प्रो. आर. पी. बहुगुणा, इतिहास और संस्कृति विभाग जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
10	श्री जितेश कुमार जोशी, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
11	डॉ. रचना मेहरा, स्कूल ऑफ़ ग्लोबल अफ़ेयर्स डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली, तथा डॉ. धारित्री नरज़ारी चक्रवर्ती, स्कूल ऑफ़ लिबरल स्टडीज़ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
12	प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली

13	डॉ. फिलिप बाकहोल्ट, लाइपज़िग यूनिवर्सिटी लाइपज़िग, जर्मनी	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
14	प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
15	डॉ. अभिषेक आनंद तथा प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
16	श्री जितेश कुमार जोशी, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
17	प्रो. स्वराज बासु, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
18	प्रो. शशि भूषण उपाध्याय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
19	प्रो. शशि भूषण उपाध्याय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
20	श्री अजय माहुरकर, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली

आवरण सज्जा साभार

1) त्रायसत्रिम्स स्वर्ग से बुद्ध का पदार्पण; सांची *स्तूप* 1; उत्तरी प्रवेशद्वार; संकिसा में पदार्पण

फ़ोटोग्राफ़र : अनंदजोती भिक्खू, फरवरी, 2017 (क्रिएटिव कॉमन्स एट्रिब्यूशन 2.0 के तहत)
लेखक : फोटो धर्मा, सदाओ, थाईलैंड
छवि स्रोत : लिकर
स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki File:Descent_ of_ the_ Buddha_ from_the _Trayastrimsa_ Heaven_ Sanchi_Stupa_1_ Northern_Gateway.jpg

2) अशोक के लुंबिनी अभिलेख में उत्कीर्ण शब्द *पियदसी*

फ़ोटोग्राफ़र : फोटो धर्मा, पेनांग, मलेशिया, सितम्बर 2018 (क्रिएटिव कॉमन्स एट्रीब्यूशन 2.0 जेनेरिक)
स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Piyadasi_in_the_Lumbini_Edict_of_Ashoka.jpg

3) अशोक के स्तम्भ पर *धम्म* अभिलेख

फ़ोटोग्राफ़र : अभातनागर 2, सितम्बर 2018 (क्रिएटिव कॉमन्स एट्रीब्यूशन शेयर एलाइक 3.0 अनपोर्टेड)
स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Dhamma_inscription.jpg

4) अशोक का कन्धार द्विभाषीय (ग्रीक तथा आर्माइक) शिलालेख, तीसरी शताब्दी बी सी ई

फ़ोटो स्रोत : काबुल संग्रहालय, कंधार
स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki/File:AsokaKandahar.jpg

मुद्रण प्रस्तुति	आमुख अभिकल्पना
श्री तिलक राज सहायक कुलसचिव एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली	श्री राकेश कुमार ग्राफिक डिज़ाइनर, आर. के. इंटरप्राईज़ नई दिल्ली

जून, 2022

© *इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,* 2022

ISBN : 978-93-5568-227-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ़ या किसी अन्य रूप में, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित और अधिक सूचना मैदान गढ़ी, नई दिल्ली स्थित विश्वविद्यालय के कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की ओर से कुलसचिव, एमपीडीडी, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेज़र टाइपसेटः डी. के. प्रिंटर्स, कीर्ति नगर, नई दिल्ली

पाठ्य विवरण

			पृष्ठ संख्या
पाठ्यक्रम परिचय			**7**
खंड I	:	**अतीत तथा इतिहास**	**11**
इकाई 1	:	इतिहास क्या है?	13
खंड II	:	**प्रारंभिक भारत में इतिहास लेखन**	**25**
इकाई 2	:	मिथक, *दान-स्तुति, गाथा, आख्यान* और महाकाव्य तथा *इतिहास-पुराण* परम्परा की ओर संक्रमण	27
इकाई 3	:	बौद्ध तथा जैन परम्पराएँ	39
इकाई 4	:	*कथाएँ और चरित*	53
इकाई 5	:	अभिलेख एवं *प्रशस्तियाँ*	69
इकाई 6	:	कल्हण	92
खंड III	:	**दक्षिण भारत में इतिहास लेखन**	**103**
इकाई 7	:	संगम साहित्यिक परम्परा	105
इकाई 8	:	*आमुक्तमाल्यद* तथा *रायवाचकमु*	123
खंड IV	:	**इतिहास लेखन की क्षेत्रीय परम्पराएँ**	**141**
इकाई 9	:	संतचरित लेखन और भक्ति परम्परा	143
इकाई 10	:	वंशावलियाँ तथा पारिवारिक इतिहास	166
इकाई 11	:	*बखर* और *बुरँजी*	181
खंड V	:	**इतिहास लेखन की हिंद-फ़ारसी परम्पराएँ**	**201**
इकाई 12	:	ज़ियाउद्दीन बरनी	203
इकाई 13	:	मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता	218
इकाई 14	:	अबुल फ़ज़ल	229
खंड VI	:	**'दूसरों' के नज़रिए से भारत**	**241**
इकाई 15	:	यूनानी, चीनी, अरबी तथा फ़ारसी विवरण	243
इकाई 16	:	यूरोपीय यात्रा-वृत्तांत	275
खंड VII	:	**औपनिवेशिक भारत में इतिहास लेखन**	**297**
इकाई 17	:	औपनिवेशिक इतिहास लेखन	299
इकाई 18	:	राष्ट्रवादी	310
खंड VIII	:	**स्वतंत्रता-पश्चात् इतिहासलेखन**	**321**
इकाई 19	:	मार्क्सवादी तथा सबाल्टर्न	323
इकाई 20	:	इतिहास लेखन में उभरते विषय	335

पाठ्यक्रम अध्ययन-संबंधी दिशा-निर्देश

इस पाठ्यक्रम में हमने अध्ययन सामग्री के प्रस्तुतिकरण का समरूप पैटर्न अपनाया है। यह पाठ्यक्रम परिचय से प्रारम्भ होता है, जिसमें कालक्रमानुसार विकास के महत्वपूर्ण चरणों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें **8** विशिष्ट **खंड** हैं जिन्हें **20 इकाइयों** में बाँटा गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इकाइयों की संरचना एक समान रखी गई है। इकाई के प्रथम भाग, उद्देश्य, का प्रयोजन आपको इकाई के अध्ययन से संबंधित विशिष्ट मुद्दों से अवगत कराता है। कृपया इन उद्देश्यों को ध्यान से पढ़िए और प्रत्येक इकाई के भाग को पढ़ने के बाद खुद पुनः उस पर चिन्तन कीजिए। इकाई की प्रस्तावना आपको इकाई की विषय-वस्तु से परिचित कराती है तथा आपको इकाई की विषय-वस्तु के संबंध में दिशा-निर्देश देती है। तत्पश्चात् पाठ्यक्रम की सुगमता के लिए विभिन्न भागों तथा उपभागों में मुख्य विषय की चर्चा की गई है। इकाई के बीच में बोध प्रश्न दिए गए हैं। हमारा निवेदन है कि आप जब भी इन प्रश्नों तक पहुँचें, इन्हें अवश्य पढ़ें तथा हल करें। यह न केवल आपको, आपके स्वयं अध्ययन के मूल्यांकन में सहायक होगा, बल्कि इससे आप यह भी जाँच सकेंगे कि आपने विषय-विशेष को कितना समझा। अपने उत्तर की जाँच आप सारांश के बाद दिए गए उत्तर-संबंधित मुख्य बिंदुओं से कीजिए। प्रत्येक इकाई के अंत में शब्दावली प्रदान की गई है, जिसे इकाई में बोल्ड में दर्शाया गया है। प्रत्येक इकाई के अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची भी प्रदान की गई है। इस सूची में उन स्रोतों तथा ग्रंथों की चर्चा की गई है जो आपके अध्ययन के लिए उपयोगी हैं अथवा अध्ययन सामग्री के निर्माण के दौरान प्रयुक्त किए गए हैं। आप उन पर अवश्य नज़र डालें। हमने कुछ शैक्षणिक वीडियो अध्ययन की समझ को बढ़ाने के लिए दिए हैं। कृपया आप इन वीडियो को देखें, यह आपकी संबंधित विषय-वस्तु की व्यापक समझ को बढ़ाने में सहायक होगा।

पाठ्यक्रम परिचय

यह पाठ्यक्रम-विशेष रूप से यूरोप-केन्द्रित अवधारणा कि 'भारत में कभी कोई इतिहास नहीं था' पर 'पुनर्दृष्टि' डालने का एक प्रयास है। इतिहास के पन्नों पर दृष्टि डालते हुए, यह पाठ्यक्रम, भारत में 'इतिहास की अवधारणा' की उपस्थिति पर दृष्टि डालने के विचार के साथ परिकल्पित किया गया है। इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य भारत में ऐतिहासिक लेखन में ऐतिहासिक चेतना की उपस्थिति का अवलोकन करना है। यह पाठ्यक्रम प्राथमिक रूप से इस विषय को संबोधित करता है कि भारतीय साहित्यिक कृतियाँ किस सीमा तक आधुनिक मानदंडों के अनुसार ऐतिहासिक चेतना को प्रकट करती हैं। इतिहास लेखन के तीन आधारभूत घटक होते हैंः तथ्यों का संग्रह, उनका चयन और व्याख्या। यह पाठ्यक्रम विभिन्न शैलियों में, विभिन्न उपलब्ध ऐतिहासिक कृतियों पर दृष्टि डालने का प्रयास करेगा। यह पाठ्यक्रम यह देखने का प्रयास करेगा कि वे कौन से कारण थे जिन्होंने समकालीन लेखकों को अपने तथ्यों के विशिष्ट चयन और उनके विश्लेषण को प्रभावित किया; एक रचना-विशेष को कलमबद्ध करने का उद्देश्य क्या था? किसी लेखक के स्वयं के क्या पूर्वाग्रह थे; उनके द्वारा वर्णित घटनाओं के साथ उनका क्या संबंध था; इतिहास के विचार का संपूर्ण प्रश्न इन्हीं प्रश्नों के आसपास केन्द्रित रहेगा।

अतीत का अध्ययन करते हुए हमने स्वयं को 'यूरोप-केंद्रित' इतिहास लेखन की विचारधारा से दूर रखा है क्योंकि भारत में मौजूद रही इतिहास लेखन की श्रेणियाँ तथा परम्पराएँ आवश्यक रूप से इन तथाकथित 'वेबरवादी' तथा 'मार्क्सवादी' विचारों से मेल नहीं खातीं। समय और कालानुक्रम की भारतीय धारणाएँ रेखिक समय तथा कालानुक्रम की यूरोपीय धारणाओं के साथ सीधे टकराव में आईं। यूरोपीय धारणाओं के अनुसार पौराणिक वंशावलियों, बौद्ध पाली संहिताओं और जैन-*पट्टावलियों* में वर्णित आख्यान किंवदंतियों और मिथकों से ज़्यादा कुछ नहीं थे।

ऐतिहासिक चेतना समय के साथ परिवर्तित होती रही और यह पाठ्यक्रम भारतीय इतिहास के प्राचीन समय से लेकर पूर्व-मध्यकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के उदाहरणात्मक निरूपणों की चर्चा करते हुए इसके सामयिक आयाम को संबोधित करेगा। हम क्षेत्रीय परंपराओं की भी चर्चा करेंगे, जो कि पूर्व-मध्यकाल से उदित हो रही थीं। यह पाठ्यक्रम यह भी चर्चा करेगा कि किस प्रकार ऐतिहासिक चेतना विभिन्न प्रकार के स्वरूप ग्रहण करती है और समाज तथा सामाजिक भिन्नता में स्वयं को अभिव्यक्त करती है? अतीत का हस्तांतरण किस प्रकार किया जाता रहा है? किस प्रकार यह वर्तमान का प्रतिनिधित्व करता है? वैधता और निरंतरता के प्रश्न; मिथकीय उत्पत्तियाँ तथा औचित्य सिद्ध करने के प्रयास कुछ ऐसी विषय-वस्तुएँ हैं जिन पर भी विचार किया गया है।

यह पाठ्यक्रम प्रारम्भिक भारतीय इतिहास के निर्माण के साथ शुरू होता है। हम ऐतिहासिक परम्परा और इसके सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक संदर्भ से क्या समझते हैं? प्रारम्भिक भारत में अतीत के ऐतिहासिक पठन तथा अभिलेखन की क्या अन्तर्दृष्टि तथा प्रकृति रही थी? अतीत के अंतर्बद्ध तथा मूर्त ऐतिहासिक स्वरूप की क्या विशेषताएँ थीं? इन सभी प्रश्नों को **खंड I** में संबोधित किया गया है।

खंड II *इतिहास-पुराण* परम्परा पर केंद्रित है, किस प्रकार *दान-स्तुति, गाथा* और *आख्यान* साहित्य एक संभावित ऐतिहासिक स्रोत सामग्री के रूप में प्रयुक्त हो सकता था? यह *महाभारत* और *रामायण* पर, इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोतों के रूप में, विचार करता है और किस प्रकार पुराण अंतर्बद्ध स्वरूप से इतिहास की मूर्त परम्परा की ओर संक्रमण का संकेत करते हैं (**इकाई 2**)। *इतिहास-पुराण* परम्परा के अतिरिक्त, प्रारम्भिक भारत के ऐतिहासिक अतीत का निर्माण 'अन्य' परंपराओं के माध्यम से भी किया जा सकता था, जिसमें विशेष रूप से बौद्ध और जैन ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। यह खंड (**इकाई 3**) अतीत की रचना में *संघ* की भूमिका पर भी नज़र डालती है। गुप्त काल से *कथाएँ* और *चरित*, अन्य प्रकार की साहित्यिक शैलियाँ थी, जो प्रमुख रूप से उभर रही थीं। **इकाई 4** इतिहास को रचने के इन महत्वपूर्ण रूपों, *कथाओं* और *चरितों*, का विश्लेषण करने का प्रयास करती है। यह खंड अभिलेखों तथा *प्रशस्तियों* की ऐतिहासिक ज्ञान के प्रमुख स्रोतों के रूप में, और किस प्रकार ये अतीत के पुनर्निर्माण में सहायक होते हैं, की भी व्याख्या करता है (**इकाई 5**)। *राजतरंगिणी* को प्रथम 'वास्तविक' ऐतिहासिक कृति माना जाता है। अतः, हमने, **इकाई 6** में *राजतरंगिणी* के ऐतिहासिक

महत्व का आकलन किया है। *राजतरंगिणी* इस अर्थ में अनूठी है कि यह इतिहास लेखन का एक काव्यात्मक प्रयास है। महान् विद्वान फ़ैज़ी भी अबुल फ़ज़ल के *अकबरनामा* का काव्यात्मक संस्करण लिखने की आकांक्षा रखते थे, किंतु अपने इस स्वप्न को वे पूरा न कर सके। भारत में फ़ारसी में काव्यात्मक इतिहास लेखन का एकमात्र प्रमुख सफल प्रयास इसामी ने किया था, जिन्होंने *फ़ुतुह-अस सलातीन* की रचना मुहम्मद बिन तुग़लक़ के समय में की थी।

खंड III प्रारंभिक दक्षिण भारतीय साहित्यिक परम्पराओं में ग्रंथों और ऐतिहासिक पद्धतियों के बीच मध्य संबंधों पर दृष्टि डालती है। इसका ध्यान ग्रंथों के पाठ, ग्रंथों के उपयोग तथा ग्रंथ और इतिहास के मध्य संबंधों में आने वाले परिवर्तनों पर केंद्रित है। यह प्रारंभिक साहित्यिक ग्रंथों में ऐतिहासिक चेतना की उपस्थिति को रेखांकित करता है। इस संदर्भ में संगम साहित्य, विशेष रूप से *तोलकाप्पियम, पत्तुपट्टु, मदुरैकाँची* (तमिल साहित्यिक परम्परा) और *आमुक्तमाल्यद* तथा *रायवाचकमु* (तेलुगु साहित्य परम्परा) को लिया गया है। *अकम* (लोगों के निज़ी जीवन से संबंधित कविताएँ) तथा *पुरम* (बाह्य जीवन जैसे युद्ध, इत्यादि से संबंधित कविताएँ) दोनों ही साहित्यिक परंपराओं की संगम काल में उपस्थिति प्रारंभिक ऐतिहासिक तमिल क्षेत्र के पुनर्निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं (**इकाई 7**)। प्रारंभिक तमिल साहित्यिक परम्परा के अतिरिक्त **खंड III** विजयनगर साम्राज्य के इतिहास की अवधारणा को एक विस्तृत पटल पर व्याख्यायित करने के लिए तेलुगु साहित्यिक ग्रंथों, विशेष रूप से *आमुक्तमाल्यद* तथा *रायवाचकमु*, पर भी दृष्टि डालती है। *रायवाचकमु* विजयनगर शासकों तथा *नायकों* के बीच संबंधों के पुनर्निर्माण में भी सहायक सिद्ध हुआ है (**इकाई 8**)।

खंड IV के केंद्र में भक्ति तथा सूफ़ियों से संबंधित प्रशंसापूर्ण संत जीवनचरित हैं। भक्ति साहित्यिक ग्रंथ जैसे *भक्तमाल, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, कबीर परचई, दादू जन्मलीला* तथा सूफ़ी संत जीवनचरित जैसे *सियार-उल औलिया, अख़बार-उल अख्यार, मिरात-उल अबरार, सूफ़ी तज़किरे, चरखीनामा* और *चरखानामा* शामिल हैं। यद्यपि ये मुख्य रूप से धार्मिक शैली में गढ़े गए थे तथापि ये अक्सर ऐतिहासिक चरित्रों को शामिल करते हैं, अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं पर रोशनी डालते हैं और, इससे भी अधिक, अपने समय की सोच को प्रकट करते हैं। संतचरितों में 'करिश्मों' और 'चमत्कारों' के तत्व शामिल हैं और कई बार इनमें 'असंभव कालक्रमों' को दर्ज किया गया है जो प्रत्यक्ष रूप से किसी वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक लेखन की धारणा पर हमला करता है। तथापि इन्हें सीधे-सीधे खारिज नहीं किया जा सकता है। ये अक्सर अपने समकालीन विश्वासों और मनोवृत्तियों के संबंध में मूल्यवान जानकारी प्रदान करते हैं जो उस समय के ऐतिहासिक विकासक्रम को समझने के लिए आवश्यक है। यह खंड वंशावली संबंधी-दस्तावेज़ों की विभिन्न परंपराओं की भी व्याख्या करता है और किस प्रकार ये दस्तावेज़ अपने समय के सामाजिक इतिहास की रचना करने से महत्वपूर्ण ढंग से जुड़े हुए थे पर भी दृष्टिपात करता है। इस संदर्भ में *चारण, भाट, वहीवांचा बारोत* की चर्चा की गई है, इनमें विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं बंगाल के *कुलग्रंथ* और कुमाऊं के *पुस्तनामा*। लेकिन, इन ग्रंथों की ऐतिहासिकता का आकलन करते हुए इनको उपयोग में लाते समय सावधानी बरतने की आवश्यकता है। इसके विपरीत पारिवारिक दस्तावेज़ हैं जो बहुत विस्तृत हैं तथा अपने समय की व्यावसायिक प्रवृत्तियों पर महत्वपूर्ण रोशनी डालते हैं। इस संदर्भ में बड़ौदा के हरी-भक्ति संग्रह के अध्ययन की विस्तार से चर्चा की गई है (**इकाई 10**)। यह खंड क्षेत्रीय साहित्यिक परम्पराओं – महाराष्ट्र के *बखर* तथा असम की *बुरँजी* – पर भी विशिष्ट प्रकाश डालता है (**इकाई 11**)। ये क्षेत्रीय परम्पराएँ उन क्षेत्रों, जिन क्षेत्रों के लिए किसी भी प्रकार के लिखित दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं हैं, के ऐतिहासिक विकास तथा वहाँ हो रहे सामाजिक-राजनीतिक विकासक्रम के महत्व को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

तेरहवीं शताब्दी में भारत में काग़ज़ प्रौद्योगिकी की शुरुआत के साथ भारत में लिखित दस्तावेज़ों का विपुल भंडार उपलब्ध हुआ। तुर्क अपने साथ इतिहास लेखन की इस्लामी परम्परा लेकर आए। इस प्रकार भारत में फ़ारसी भाषा में कई ऐतिहासिक कृतियों की रचना हुई। लेकिन इस प्रकार के शुरुआती ऐतिहासिक फ़ारसी ग्रंथ जिनकी रचना भारत में हुई, उनका अत्यधिक झुकाव इतिहास लेखन के *कुरान* और *शरिया* पर आधारित सिद्धांतों की ओर था। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ये ऐतिहासिक ग्रंथ अभिजात्यों को ध्यान में रखकर लिखे गए थे तथा मोटे तौर पर ये वंश-आधारित इतिहासों तथा कुलीन वर्ग पर ही विचार करते हैं। ग़ैर-कुलीन तत्वों तथा सामान्य जन इनकी मुख्य विषयवस्तुओं में मात्र एक सहायक पात्र बिंदु के रूप में प्रकट होते हैं, तथा उनके कृत्यों को गहराई

के साथ अध्ययन योग्य नहीं माना गया था। **खंड V** मध्यकालीन भारत के ऐसे तीन महान् व्यक्तित्वों, ज़ियाउद्दीन बरनी (14वीं शताब्दी) तथा मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता और अबुल फ़ज़ल (16वीं शताब्दी), की ऐतिहासिक रचनाओं पर चर्चा करते हुए इन सभी मुद्दों की चर्चा करती है। बरनी ने अपने *मुक़द्दिमा* (प्रस्तावना) में विस्तार से इतिहास की अवधारणा पर प्रकाश डाला है। बरनी में इतिहास लेखन का गहरा बोध था, यद्यपि भविष्य की पीढ़ियों के लिए 'सत्य और केवल सत्य' को निरूपित करने पर बल देने के बावजूद उसका लेखन पक्षपात से रहित नहीं था। निम्न कुलों से संबंध रखने वालों के प्रति उसका विशिष्ट पूर्वाग्रह था। उसकी रचनाएँ भी गहन रूप से *शरिया* और पैग़ंबर की परंपराओं से अभिप्रेरित हैं (**इकाई 12**)। फ़रिश्ता की रचनाओं का स्वरूप व्यापक है और उसका ध्यान केवल दिल्ली के सुल्तानों या मुग़लों पर केंद्रित नहीं था बल्कि उसका इतिहास संपूर्ण उपमहाद्वीप का इतिहास था (**इकाई 13**)। अबुल फ़ज़ल को अपने समय का महानतम इतिहासकार माना जा सकता है, एक श्रेष्ठ विद्वान जो धार्मिक पूर्वाग्रहों से मुक्त था, उसने अपेक्षाकृत एक व्यापक दृष्टिकोण के साथ इतिहास लिखने का प्रयास किया था। अपने ग्रंथ की शुरुआत पैग़ंबर की प्रशंसा से करने के बजाय उसने अपने इतिहास को मानव-जाति के इतिहास के रूप में प्रस्तुत करते हुए इसे आदम (Adam) की कथा के साथ शुरू किया है। हालांकि उसका इतिहास भी पूर्णतः पूर्वाग्रह मुक्त नहीं था, वह पूर्ण रूप से अकबर को एक 'श्रेष्ठ इंसान' के रूप में प्रस्तुत करना चाहता था, अतः उसने उन जानकारियों के साथ छेड़छाड़ की जो अकबर को *इंसान-ए कामिल* के रूप में प्रस्तुत करने की उसकी परियोजना से मेल नहीं खाती थीं (**इकाई 14**)।

भारत की विदेशियों के साथ संपर्क की परम्परा सिंधु घाटी सभ्यता तक पीछे जाती है, जब मिस्र के दस्तावेज़ भारत को मेलुहा के रूप में याद करते हैं और भारत के दिलमुन तथा मिस्र के साथ संबंधों को दर्ज करते हैं। यद्यपि, दक्षिण भारत के साथ हिंद-रोमन व्यापार के विस्तार और उत्तर भारत में सिकंदर के आक्रमण के साथ भारत को व्यापक रूप से यूनानी-रोमन दस्तावेज़ों में निरूपित किया जाने लगा, इसके साथ ही यूनानी यात्रियों के भारत आगमन की प्रवृत्ति में भी वृद्धि हुई। उन्होंने भारत के संबंध में समृद्ध विवरण छोड़े हैं। इनमें विशेष रूप से मेगस्थनीज़ की *इंडिका* तथा *पेरीप्लस ऑफ़ द एरीथ्रियन सी* का उल्लेख किया जा सकता है। भले ही चीनी यात्रियों के भारत भ्रमण का उद्देश्य पूर्णतः धार्मिक था, वे बौद्ध धर्म-संबंधी ज्ञान की खोज में गुप्त काल (फाह्यान) से भारत आते रहे थे, जिसका अनुसरण ह्वेनसांग/ज़ुआन ज़ांग तथा इत्सिंग (यीजिंग) (सातवीं शताब्दी) ने किया। तथापि, भारतीय शासकों, देश के धार्मिक परिवेश, उन स्थानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति जहाँ वे गए थे, इस संबंध में उनका अवलोकन उनके भारत के संबंध में दृष्टिकोण पर महत्वपूर्ण रोशनी डालता है। अरब विजय, और अरबों के व्यापार के साथ, तथा भारतीय विज्ञान को सीखने की अरबों की चाह का परिणाम भारत के अरब दुनिया के साथ व्यापक संपर्क में निकला। इसके परिणामस्वरूप, अरब भूगोलवेत्ताओं के लेखन में भारत का व्यापक रूप से चित्रण किया गया है। अरब इतिहासकारों के बीच इस प्रकार का एक महान् व्यक्तित्व अल-बिरूनी था, जो संस्कृत का अध्ययन करने और भारतीय विज्ञान को सीखने का प्रयास करने, विशेष रूप से गणित और खगोल-विद्या, और कुछ संस्कृत ग्रंथों का अरबी में अनुवाद करने के लिए भारत में 13 वर्षों के लंबे समय तक रहा था (**खंड VI**)। 15वीं शताब्दी के बाद से ही मसालों और वस्तुओं के लाभदायक व्यापार ने यूरोपियों को भारतीय समुद्र की ओर आकृष्ट किया। इनमें सबसे पहले पदापर्ण करने वाले पुर्तगाली थे। इनके बाद अंग्रेज़, डच, फ़्रांसीसी, और डेन आए। **खंड VI** इस प्रकार इन यूरोपीय यात्रियों के अवलोकनों पर ध्यान केन्द्रित करता है (**इकाई 16**)। इस काल में इस तरह की यात्रा करने वालों की सूची लंबी और अंतहीन हैः पीटर मुंडी, डोमिंगो पाएज़, नूनिज़, जेसुइट, पेल्सार्ट, थॉमस रो, टैवर्नियर, बर्नियर, मनुची, इत्यादि। उन्होंने दिलचस्प विवरण प्रस्तुत किए हैं और लगभग भारतीय जीवन के समस्त पहलुओं के विषय में लिखा है। इस प्रकार मध्यकालीन भारतीय इतिहास को समझने के लिए यूरोपियों के विवरण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। तथापि, वे भी पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं हैं। कई बार उन्होंने भारतीय परिस्थितियों को यूरोपीय नज़रिए से देखने की कोशिश की, परिणामस्वरूप उन्होंने तथ्यों के वर्णन और कथन में गंभीर गलतियाँ की हैं, जिन पर बाद में सवाल भी उठाया गया है। इस प्रकार की सबसे प्रमुख टिप्पणी बर्नियर ने की है जिसने भारतीय परिस्थितियों की गलत समझ के कारण लिखा है कि बादशाह भारत में संपूर्ण भूमि का 'मालिक' है। उसने यह भी टिप्पणी की कि भारत में कोई 'मध्यम वर्ग' नहीं है।

खंड VII औपनिवेशिक तथा राष्ट्रवादी इतिहास लेखन पर परिचर्चा की ओर ले जाता है। औपनिवेशिक विचारधारा से संबंध रखने वाले प्रमुख प्रतिपादकों जैसे जेम्स मिल, एलफिंस्टन, इलियट और डाउसन तथा विंसेंट स्मिथ के दृष्टिकोणों तथा विचारों, की विस्तार से चर्चा की गई है। जेम्स मिल द्वारा भारतीय इतिहास का हिंदू, मुस्लिम तथा ब्रिटिश कालों में किया गया काल-विभाजन ब्रिटिश-पूर्व युग के इतिहास को सांप्रदायिक राह पर ले गया। पूर्व-औपनिवेशिक भारत का 'असभ्य तथा गतिहीन' के रूप में उनके द्वारा किया गया चित्रण हमारे मस्तिष्क में लंबे समय तक हावी रहा है (**इकाई 17**)। औपनिवेशिक इतिहासकारों ने यह दोषारोपण किया कि भारत राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक दक्षता से हीन है। उनका तर्क था कि ब्रिटिश सरकार के उदार शासन के विपरीत, पूर्व-औपनिवेशिक राजनीतिक सत्ताएँ अपनी प्रकृति में 'भयावह रूप से क्रूर' थीं। औपनिवेशिक इतिहास लेखन के प्रतिउत्तर में राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इसका 'प्रति-आख्यान' लिखने का प्रयास किया। वह 'राष्ट्रीय गौरव पर ठेस लगने' के भाव से अभिप्रेरित थे। **इकाई 18,** 19वीं और 20वीं शताब्दियों के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी विचारकों – आर. जी. भंडारकर, के. पी. जायसवाल, आर. के. मुखर्जी और आर. सी. मजूमदार की चर्चा करती है।

अंतिम **खंड VIII** के केंद्र में स्वतंत्रता-पश्चात् भारत का ऐतिहासिक विकासक्रम है। यह खंड भारतीय इतिहासलेखन में कुछ आधुनिक प्रवृत्तियों को रेखांकित करता है। **इकाई 19** के केंद्र में मार्क्सवादी और सबाल्टर्न अध्ययन है। इस पाठ्यक्रम की अंतिम **इकाई (20)** भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा में नई प्रवृत्तियों को उजागर करती है। इसमें तीन प्रमुख प्रवृत्तियों, पर्यावरण इतिहास, लिंगबोध-संबंधी अध्ययन तथा श्रम के इतिहास, की ओर किस प्रकार यह प्रवृत्तियाँ भारतीय इतिहास लेखन को आकार प्रदान कर रही हैं, की चर्चा विस्तार के साथ की गई है।

खंड I
अतीत तथा इतिहास

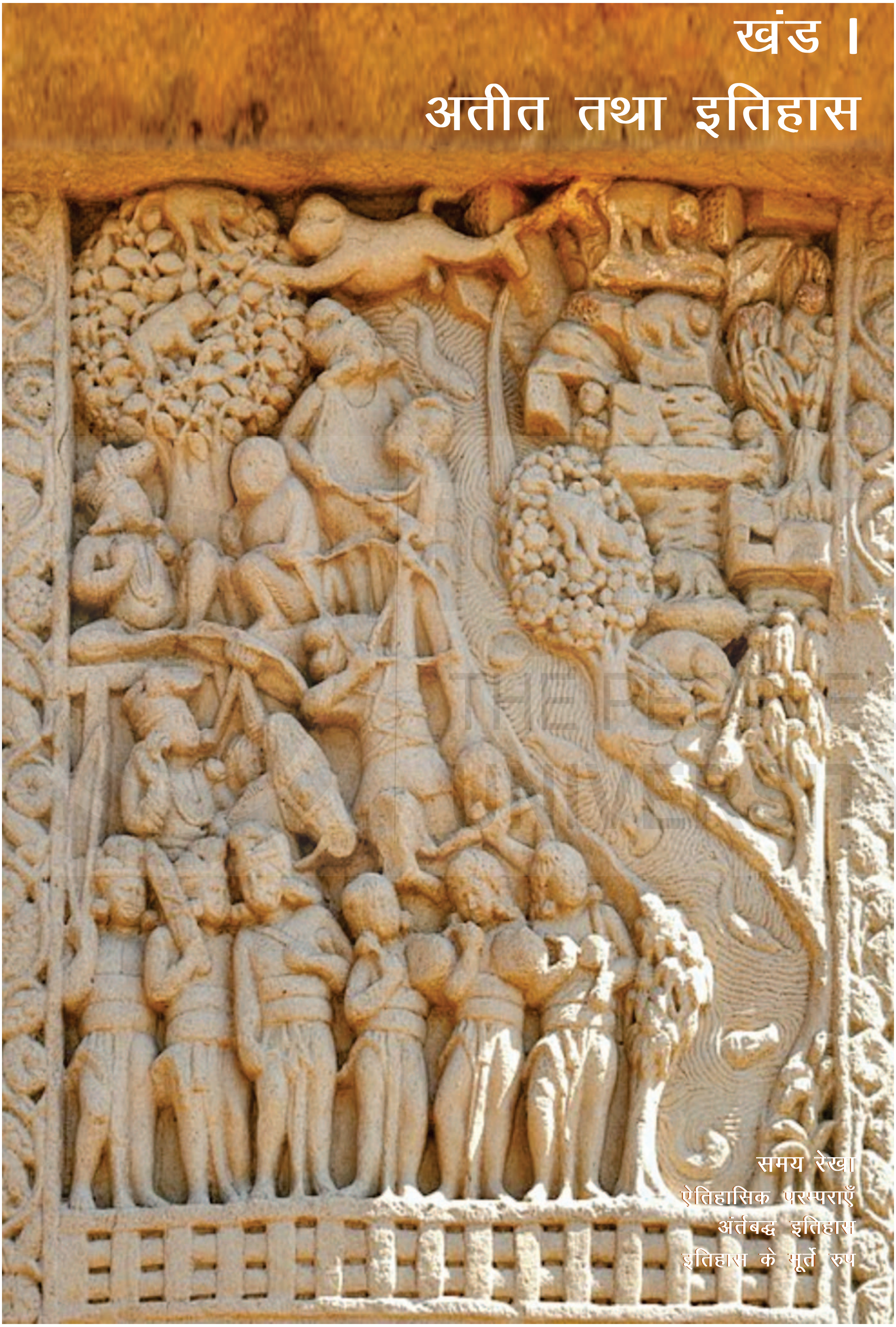

समय रेखा
ऐतिहासिक परम्पराएँ
अंतर्बद्ध इतिहास
इतिहास के मूर्त रूप

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

महात्मा बुद्ध के पूर्वजन्म के जीवन का एक दृश्यः महात्मा बुद्ध कपिराजा के रूप में 80,000 वानरों को अपने शरीर की ढाल द्वारा नदी की धारा से बचाकर निकालते हुए; *महाकपि जातक*, साँची; प्रथम शताब्दी बी सी ई

लेखकः बिस्वरूप गांगुली; अगस्त 2017

स्रोतः https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mahakapi_Jataka.jpg

इकाई 1 इतिहास क्या है?*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रारंभिक भारतीय इतिहास का निर्माण

1.3 ऐतिहासिक परम्परा क्या है?

1.4 ऐतिहासिक परम्परा की ओर

1.5 प्रारंभिक भारत में अतीत के प्रति दृष्टिकोण तथा उसका पाठांकन

1.6 विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक परम्पराएँ

1.7 *इतिहास* तथा इसके विभिन्न स्वरूप

1.7.1 अंतर्निहित/अंतर्बद्ध इतिहास (Embedded History)

1.7.2 इतिहास के मूर्त रूप (Externalised Historical Forms)

1.8 ऐतिहासिक परम्पराओं के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संदर्भ

1.9 विचारधारात्मक चिंतन

1.10 सारांश

1.11 शब्दावली

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 संदर्भ ग्रंथ

1.14 शैक्षणिक वीडियो

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान पाएँगेः

- प्रारम्भिक भारतीय इतिहासलेखन और इसकी विशेषताओं के विषय में,
- क्या भारत में इतिहास रहा है?,
- इतिहास के अंतर्निहित तथा मूर्त रूपों के विषय में, और
- उन संदर्भों के बारे में जिन्होंने ऐतिहासिक परम्पराओं को गढ़ा है।

1.1 प्रस्तावना

12वीं शताब्दी तक यूरोप में इतिहासलेखन महत्वपूर्ण हो गया था। यहूदी-ईसाई धर्मों में कुछ परंपराओं के प्रमाणीकरण की आवश्यकता थी। इसने इतिहास को केंद्रीय भूमिका प्रदान की। 19वीं शताब्दी तक इतिहास को किसी भी सभ्यता के केंद्रीय तत्व के रूप में देखा जाने लगा। यह विश्वास किया जाता था कि चाहे वनस्पति विज्ञान हो या भौतिक विज्ञान या कोई भी अन्य अध्ययन का विषय, उसका एक इतिहास रहा है और यह उस विषय के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने का साधन रहा है। इस प्रकार कोई भी सभ्यता जो इतिहास-विहीन थी उसे ज्ञान से विहीन सभ्यता के रूप में देखा जाने लगा। यूरोप की एक एकल पहचान इस तथ्य से उत्पन्न हुई कि यूनानियों से लेकर आधुनिक यूरोप तक एक निरंतरता का क्रम जारी रहा था। इतिहास के अध्ययन के माध्यम से इस पहचान को जाना जा सकता था। यूनानियों और मेसोपोटामिया के निवासियों की भी एक ऐतिहासिक परम्परा रही थी।

* **डॉ. शुचि दयाल, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

चीन के निवासियों ने भी दूसरी शदाब्दी सी ई से ही घटनाओं को दर्ज करना प्रारंभ कर दिया था जो सृष्टि के समय के चक्रीय स्वरूप पर आधारित था और इसमें आचारशास्त्रीय तथा कार्य-कारण के प्रश्नों पर विचार किया गया था। अतीत संबंधी यूनानी-रोमन लेखन को ऐतिहासिक समझा गया था क्योंकि यह तथ्यों और तार्किक अन्वेषण पर आधारित था। प्राचीन यूरोप के दस्तावेज़ों में वंशावली, कार्य-कारण, धारावाहिक विवरण तथा कालबद्धता को सावधानीपूर्वक दर्ज किया गया है। विश्व इतिहास लेखन की इस पृष्ठभूमि में औपनिवेशिक शासन के अधीन लिखे गए प्रारंभिक भारत के देशज इतिहास लेखन परंपरा के शोध को समझना होगा।

इस इकाई में हम प्रारंभिक भारत की ऐतिहासिक परंपराओं का अध्ययन करेंगे। हम यह जाँच करेंगे कि क्या प्रारंभिक भारत में किसी भी तरह की ऐतिहासिक चेतना विद्यमान रही थी और उसने किस प्रकार के रूप ग्रहण किए।

1.2 प्रारंभिक भारतीय इतिहास का निर्माण

18वीं शताब्दी में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने संस्कृत परम्परा में एक विशिष्ट श्रेणी के रूप में ऐतिहासिक साहित्य की खोज करना शुरू किया। इस प्रयास में उन्होंने असफलता व्यक्त की और भारतीय संस्कृति और इसकी हिंदू सभ्यता को इतिहास-विहीन मान लिया गया। यद्यपि विलियम जोंस जैसे कुछ भारतविद् आश्वस्त थे कि कुछ ग्रंथों में इतिहास का केंद्रीय तत्व समाहित रहा हो सकता है। पर अधिकांश का यह मानना था कि इन ग्रंथों में अतीत के वास्तविक अभिलेखन का साक्ष्य बहुत कम ही मिलता था। एकमात्र अपवाद कल्हण की *राजतरंगिणी* थी जो कश्मीर का 12वीं शताब्दी का इतिहास थी।

प्राच्यविदों का यह मत था कि प्राचीन भारत में कोई इतिहास नहीं था क्योंकि प्राथमिक रूप से उनके अनुसार भारत में किसी भी तरह की ऐतिहासिक रचनाओं का नितांत अभाव था। इतिहास से उनका अभिप्राय इतिहास-अध्ययन विषय से था। क्योंकि प्राचीन भारतीयों में इतिहास का बोध अनुपस्थित था, इस प्रकार वे ऐतिहासिक चेतना से भी विहीन थे। यहाँ इतिहास और ऐतिहासिक रचनाओं के बीच अंतर किया जाना महत्वपूर्ण है। प्राच्यवादियों ने यह देखा कि महाकाव्यों, *पुराणों* तथा विदेशियों के वृत्तांतों में दर्ज की हुई कहानियों के आधार पर भारत के इतिहास का थोड़ा-बहुत पुनर्निर्माण किया जा सकता है लेकिन किसी प्रकार का ऐतिहासिक लेखन यहाँ पूरी तरह से अनुपस्थित था। 'ऐतिहासिक लेखन और इस प्रकार ऐतिहासिक चेतना को वास्तविक इतिहास के चिह्न के रूप में या इसके विपरीत समझा गया। इतिहास स्वयं में ऐतिहासिक चेतना से बँधा हुआ है क्योंकि जो वास्तविक इतिहास होता है उसमें नवीन और अभूतपूर्व का सृजन करते हुए आत्मसजग अभिकर्ता मौजूद होता है, या इसके विपरीत कहें तो इतिहास का लेखन स्वयं में ऐतिहासिक चेतना की मौजूदगी की ओर संकेत करता है' (ट्रॉटमैन 2012)। समय-समय पर प्राचीन भारत में ऐतिहासिक दस्तावेज़ों की व्यवस्थागत अनुपस्थिति तथा समकालीन यूरोप के इतिहासŷखन के बीच तुलनाएँ की जाती रही थीं। उनका कहना था कि पुनर्जागरण (Renaissance) से उत्पन्न अतीत का बोध साक्ष्य, कार्य-कारण तथा कालानुक्रम के साथ ही धारावाहिक विवरण के प्रति स्पष्ट चेतना का प्रदर्शन करता था। भारत में ऐसा नहीं था।

बहरहाल, कुछ प्राच्यवादियों ने प्रबोधन (Enlightenment) के दर्शन के मानववादी संस्करण से प्रभावित होकर भारत में इतिहास की खोज की शुरुआत की। उनके द्वारा किए गए शुरुआती अध्ययन हिंदू विधि तथा धर्म के ग्रंथों से संबंधित थे। दूसरी ओर, 19वीं शताब्दी में उपयोगितावादी विचार भारतीय इतिहास की नवीन व्याख्यायों की ओर उन्मुख हो रहे थे। उनका यह मानना था कि यह तथ्य कि भारत का कोई इतिहास नहीं रहा है का कारण भारतीय समाज की प्रकृति थी। भारत के अतीत को प्राच्यवादी निरंकुशता के सिद्धांत की पुष्टि के रूप में देखा गया। जेम्स मिल की *द हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया* भारत के अतीत के संबंध में सर्वेक्षण करने का पहला प्रयास था। उसने भारत के इतिहास को तीन कालों – हिंदू, मुस्लिम सभ्यताओं तथा ब्रिटिश शासन – के रूप में विभाजित किया। भारतीय हिंदू सभ्यता को पिछड़ी, अतार्किक और गतिहीन सभ्यता के रूप में देखा गया। यह मत हीगल/हेगेल के अधिक अमूर्त ऐतिहासिक सामान्यीकरण का हिस्सा बन गया। उसके अनुसार भारत में जो नज़र आता है वह इतिहास नहीं बल्कि पूर्व-इतिहास है। एक अन्य उद्धरण में हीगल स्पष्ट तौर पर प्राचीन भारत के विषय में संकेत करता हैः 'किसी राष्ट्र का वास्तविक वस्तुनिष्ठ इतिहास तब तक

शुरू हुआ नहीं माना जा सकता जब तक वह लिखित ऐतिहासिक दस्तावेज़ों को धारण न करता हो या वहाँ लिखित ऐतिहासिक दस्तावेज़ न पाए जाते हों। ऐसी संस्कृति जिसके पास अब तक इतिहास नहीं है उसने कोई वास्तविक सांस्कृतिक प्रगति नहीं की है और यह साढ़े तीन हज़ार वर्षों के तथाकथित भारतीय इतिहास पर भी लागू होता है' (ट्रॉटमैन में उद्धृत हीगल 2012)। जेम्स मिल ने प्राच्यवादियों के इस विचार का खंडन किया कि महाकाव्यों तथा अन्य स्रोतों से भारतीय इतिहास का बोध किया जा सकता है।

इस बीच अभिलेखशास्त्र, मुद्राशास्त्र तथा पुरातत्व पर काम होना जारी रहा और इसका परिणाम भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में निकला। यद्यपि यूरोप के साथ तुलनाओं ने इस नई शुरुआत पर दबदबा बनाए रखा। 1960 के दशक में एक नया मोड़ आया जब भारतीय इतिहासकारों ने पहचाना कि प्राचीन काल में इतिहास की खोज करना संभव है। यह स्वीकार किया गया कि भारतीय समाज सुषुप्त नहीं था तथा यह परिवर्तनों के दौर से गुज़रा था। यह परिवर्तन कभी भी एकरूप नहीं था। यह भारत के अतीत के संबंध में अब तक प्रचलित पहले के मत से मूल रूप से भिन्न था। इतिहासकार इस पर सहमत थे कि भारत में प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा अस्तित्व में रही थी किंतु यह एक कमज़ोर परम्परा थी। डी. डी. कोसांबी तथा अन्य मार्क्सवादी इतिहासकारों के शोध कार्यों में ऐतिहासिक परिवर्तन के अनुसंधान की शुरुआत हुई। यह भी दावा किया गया कि एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में अतीत को व्यवस्थित करने का तरीका भिन्न-भिन्न होता है और इतिहासलेखन की भारतीय रीति उन लोगों को स्पष्ट नहीं हो सकी जो यूरोपीय परंपराओं से ही परिचित थे। मोटे तौर पर कहें तो भारतीय इतिहासलेखन की समस्यापूर्ण प्रकृति कुछ और समय तक बनी रही। वी. एस. पाठक की *एंशिएंट हिस्टॉरियंस ऑफ़ इंडिया* उपर्युक्त विचारों के लिए एक अपवाद थी जिसमें **चरित** साहित्य की एक विशिष्ट शैली का अध्ययन किया गया था। उनका तर्क था कि उस प्रकार के ग्रंथों पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है जो ***वंशावली***, इत्यादि ऐतिहासिक परंपराओं के अस्तित्व का समर्थन करते हैं। इसके बाद होने वाली चर्चाओं ने इस विश्लेषण को और समृद्ध बनाया। यह अनुभव किया गया कि इतिहास का निर्माण किससे होता है इसका निर्धारण दो तरह के ग्रंथों के बीच अंतर करके किया जा सकता हैः एक तो वे जो इतिहास के रूप में अभिज्ञात थे और दूसरे वे जिनका व्यापक साहित्यिक रुचि का दायरा था। अतीत से संबंध रखने वाले सभी ग्रंथों को इतिहास के रूप में चिह्नित नहीं किया जा सकता है। इतिहास को दर्ज करने वाली भारतीय शैलियाँ पश्चिमी परम्परा की शैलियों से बिल्कुल भिन्न थीं। इतिहास सांस्कृतिक रूप से रचा जाता है और उसके लेखक का अपने पाठकों और श्रोताओं से अंतर-संवाद निर्णायक रूप से प्रासंगिक होता है। इस संदर्भ में रोमिला थापर का शोध कार्य महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। उन्होंने प्राचीन भारत की ऐतिहासिक परम्परा का सर्वाधिक बोधगम्य अध्ययन किया है। और यहाँ हम उनके कुछ तर्कों और पर्यवेक्षणों को प्रस्तुत करेंगे जो इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि प्राचीन भारतीय समाज ने इतिहास की परिकल्पना एक भिन्न स्वरूप में की थी, कम से कम इतिहास के संबंध में पश्चिमी विचार से भिन्न स्वरूप में। 'दोनों प्रकार के ग्रंथ – वे जो इतिहास की चेतना पर प्रकाश डालते हैं और वे जो ऐतिहासिक लेखन के स्वरूपों को सामने लाते हैं – आरंभिक समयों में अतीत के पुनर्निर्माण हेतु प्रयुक्त हुए थे...' (थापर 2013)। वस्तुतः, उनके अनुसार कोई भी समाज इतिहास-विहीन नहीं होता है, प्रत्येक समाज की अतीत के संबंध में अपनी एक परिकल्पना होती है और भारत भी उसका कोई अपवाद नहीं था। महत्वपूर्ण यह एहसास करना है कि समाज कुछ निश्चित घटनाओं को अन्य घटनाओं की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं और किस प्रकार समाज दस्तावेज़ों को व्यवस्थित करते हैं यह वहाँ की ऐतिहासिक परम्परा द्वारा निर्धारित होता है।

1.3 ऐतिहासिक परम्परा क्या है?

जब समाज अतीत के संबंध में किसी प्रकार का बोध धारण करते हैं तब ऐतिहासिक परम्पराओं का सृजन होता है। इसमें तीन तत्व शामिल होते हैं:

क) अतीत की घटनाओं की ऐतिहासिक चेतना, विशेषकर उन घटनाओं की जिन्हें समाज द्वारा प्रासंगिक या महत्वपूर्ण समझा जाता है।

ख) इन घटनाओं को कालानुक्रमिक रूप में व्यवस्थित किया जाता है और ये कार्य-कारण के तत्वों को प्रदर्शित करती हैं।

ग) इन घटनाओं को उस समाज की आवश्यकताओं के अनुसार दर्ज किया जाता है।

ऐतिहासिक परम्परा उन प्रामाणिक घटनाओं को दर्ज करने वाली हो सकती है, जो यथार्थ घटनाएँ भी रही हो सकती हैं और नहीं भी, किंतु अनिवार्य रूप से अतीत के संबंध में मान्य विश्वास को प्रदर्शित करती हैं। ऐतिहासिक परम्परा का एक सामाजिक प्रकार्य या साध्य होता है। जब ऐतिहासिक परम्परा का विकास होता है उसके कुछ निश्चित संकेतक होते हैं:

1) कोई समाज समय के किस बिंदु पर ऐतिहासिक परम्परा के सृजन की आवश्यकता का अनुभव करता है?

2) इस परम्परा के रखवाले/रक्षक कौन होते हैं?

3) किस प्रकार के साहित्य में यह परम्परा अंतर्निहित होती है – धर्मनिरपेक्ष या धार्मिक?

4) इस परम्परा को दर्ज करने के लिए कौन सी शैलियाँ अस्तित्व में आती हैं?

5) एक विशेष सामाजिक संदर्भ में ऐतिहासिक परम्परा की संरचना।

6) यह परम्परा किस प्रकार के श्रोताओं/दर्शकगण को सम्बोधित करती है?

7) सामाजिक समूहों द्वारा इस परम्परा का स्व-हित में उपयोग।

'ऐतिहासिक परम्पराएँ, इस प्रकार, अतीत के उन पहलुओं का संकेत करती हैं, मौखिक रूप में या ग्रंथों में दर्ज, जो पुरातनता या परिकल्पित ऐतिहासिकता की शुचिता को धारण करते हुए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सचेत रूप से हस्तांतरित होते हैं' (थापर 2013)। प्रश्न यह नहीं है कि अतीत-संबंधी विवरण प्रामाणिक हैं या नहीं। महत्व इसका है कि प्राचीन भारतीय समाज के इन ग्रंथों में ऐतिहासिक चेतना की किस तरह परिकल्पना की गई थी। जो महत्वपूर्ण है वह यह अध्ययन करना है कि समाज ने अपने अतीत को कैसे देखा और इसी तरह क्यों देखा। ऐतिहासिक परम्परा वर्तमान को वैधता प्रदान करती है। इन पहलुओं का बोध हमें उस समय के समाज को समझ पाने में सहायता करेगा।

1.4 ऐतिहासिक परम्परा की ओर

ऐसे कई तरीके हैं जिनमें समाज अपने अतीत का प्रतिरूपण करते हैं। रोमिला थापर 'अतीत' – जिसका एक अमूर्त अर्थ में अनुभव किया जा सकता है – तथा इसके प्रतिरूपण की प्रकृति के बीच अंतर करती हैं। आरम्भिक कालों में इस तरह के प्रतिरूपण ने उस तरह के आख्यान का रूप ग्रहण किया जिसका संबंध उन घटनाओं से था जो वर्तमान समय से पूर्व के समयों में घटित मानी जाती थीं।

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में तीन तरह की परम्पराएँ शामिल हैं:

1) पौराणिक परम्परा

2) *श्रमण* परम्परा, विशेषकर बौद्ध तथा जैन परम्परा

3) चारण परम्परा

पौराणिक तथा श्रमण परम्पराएँ विशेष प्रशस्ति-परक लेखन का निर्माण करती हैं, इनमें से प्रत्येक भिन्न व्याख्या प्रस्तुत करती है। कुछ घटनाओं को प्रकाश में लाया गया तो कुछ अन्य घटनाओं को दबा दिया गया। इनमें परस्पर आदान-प्रदान भी हुआ। प्रत्येक एक-दूसरे की मौजूदगी से परिचित है, यद्यपि इसका इस तरह उल्लेख नहीं किया गया है। चारणों की परम्परा महाकाव्यों की आरम्भिक रचनाओं तक पीछे जाती है। यह चारण परम्परा बाद के समयों में भी एक उपधारा के रूप में प्रवाहित रही। चारणों ने यह दावा किया कि वे उच्च प्रतिष्ठित कुलों की वंशावलियों को सूत्रबद्ध कर रहे थे जिन्होंने दूसरी सहस्राब्दी सी ई में ऐतिहासिक स्रोतों का निर्माण किया।

पौराणिक तथा ***श्रमण*** दोनों प्रकार के प्रशस्ति-परक लेखनों में अतीत से संबंधित आख्यानों का समावेश है। सभी आख्यानों में अतीत के प्रति जिज्ञासा तथा वर्तमान में इसके प्रकार्य को रेखांकित किया गया

है। जब किसी विशेष समुदाय की आकांक्षाएँ इतिहास से बँधी होती हैं तब एक एकल आख्यान का जन्म होता है जो अतीत के किसी ख़ास दृष्टिकोण को स्वीकार्य बनाता है। ऐतिहासिक परिवर्तन के साथ ही उस अतीत के संबंध में वैकल्पिक दृष्टियाँ जन्म लेती हैं। इसके बाद वे व्याख्याएँ शामिल होती हैं जो बताती हैं कि क्यों कुछ आख्यान दूसरे आख्यानों की अपेक्षा अधिक सटीक थे। रोमिला थापर के अनुसार इतिहास के रूप में अतीत का पुनर्निर्माण हमेशा एक प्रतिरूपण भर होता है और 'निरपेक्ष सत्य' नहीं हो सकता है। प्राचीन भारत में इतिहास एक चक्रीय समय की धारणा से बँधा हुआ था। यह उस ईसाई-यहूदी परम्परा से भिन्न है जो रेखीय समय पर आधारित है और जो इतिहास की विचार-पद्धति में एक महत्वपूर्ण कारक होता है।

बोध प्रश्न-1

1) आपके मत में उपनिवेशवादी विद्वानों की भारत में किसी भी प्रकार के ऐतिहासिक बोध के विद्यमान होने के संबंध में क्या प्रतिक्रिया थी? अपने उत्तर के पक्ष में कारण दीजिए।

....

....

....

2) ऐतिहासिक परम्परा क्या है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

1.5 प्रारंभिक भारत में अतीत के प्रति दृष्टिकोण तथा उसका पाठांकन

हाल के समय में यह स्वीकारा गया है कि समाज के विभिन्न समूहों के इतिहास का अपना एक संस्करण होता है। यह कल्पना से भरा हुआ हो सकता है किंतु इसके साथ ही यह अतीत के संबंध में उसके नज़रिए को प्रकट करता है। इनके लेखकों के मंतव्य या तो इन्हें अलग बनाए रखते हैं या इनमें घोलमेल कर देते हैं। ऐतिहासिक होने का दावा करने वाले इन कल्पनापूर्ण संस्करणों से भी लेखक तथा उसके समाज के बारे में बहुत कुछ जाना जा सकता है। इन ग्रंथों में कल्पनात्मक बातों को शामिल किए जाने के कारणों का अध्ययन किया जाना चाहिए। किंतु इसके साथ ही यह भी स्वीकारा जाना चाहिए कि ये कल्पनापूर्ण हैं।

अतीत की चेतना तथा समाज के भीतर इसके प्रकार्य का अध्ययन इतिहासकार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। जिन रूपों में भारतीय समाज ने अतीत को दर्ज करना चुना उनका विश्लेषण करना अधिक प्रासंगिक हो जाता है। प्रत्येक समाज के कई अतीत होते हैं तथा उनको दर्ज करने के तरीके भी अपने रूपों में भिन्नता लिए होते हैं। अतीत को स्मृतिबद्ध करने वाले आख्यानों में विविधता हो सकती है तथा इन विविध रूपों के बीच तुलना हमें किसी आख्यान की प्रकृति के बारे में बताती है। रोमिला थापर यह दर्ज करती हैं कि अतीत का नज़रिया विशेषकर परिवर्तन तथा संक्रमण के काल में अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। यही समय होते हैं जब किसी अतीत को या तो नकार दिया जाता है या वह एक आदर्श प्रतिरूप बन जाता है। इसका वैकल्पिक रूप से बदलते हुए वर्तमान को वैध ठहराने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। कोई भी इतिहासकार जो प्राचीन भारत की ऐतिहासिक परम्पराओं का अध्ययन करता है उसे निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए :

1) चूँकि इतिहास का इस्तेमाल सत्ताधारी वर्ग को वैध ठहराने के लिए किया जाता रहा है, अधिकांश आरम्भिक ऐतिहासिक लेखन शासक वर्गों और अभिजात्यों के वचनों के रूप में है। अन्य दूसरों की कहानियों को सुनने के लिए इन वचनों को विस्तार देना पड़ता है।

2) उनके अतीत में ऐतिहासिक परिवर्तन के दृष्टिकोणों को समुदाय-विशेषों की ऐतिहासिक परम्परा में ही व्यक्त किया गया होता है।

3) इतिहास का मतलब अतीत को किसी विशेष दृष्टि से देखने से है, समय के एक निश्चित बिंदु में। इसका तात्पर्य है कि वर्तमान को हमेशा इसमें विशेष महत्व मिलता है।

4) ग्रंथ जो अतीत से संबंध रखते हैं उन्हें उनके समकालीन संदर्भ में रखकर देखा जाना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि अतीत, उससे संबंधित ग्रंथ और उसके पाठकों/श्रोताओं के बीच संबंध का इससे संकेत मिलता है।

5) समय का किसी विशेष रूप में प्रक्षेपण भी विचार अभिव्यक्त करने का एक तरीका है। घटनाओं को एक कालानुक्रम के ढाँचे में दर्ज करने वालों के दृष्टिकोण का उल्लेख किए बिना इतिहास लेखन नहीं हो सकता।

1.6 विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक परम्पराएँ

इतिहास-पुराण परम्पराएँ एक प्रकार के इतिहास-संबंधी विचार का निर्माण करती थीं। इस परम्परा की पुनर्रचना ने नायक-प्रधान से दरबारी चरण और कुल-आधारित समाजों से राज्य-व्यवस्था की ओर संक्रमण किया। इसमें से प्रथम चरण के तत्व दूसरे में भी बने रहे। चारण परम्परा ऐतिहासिक चेतना से युक्त एक भिन्न प्रकार की परम्परा का निर्माण करती है। इन दोनों परम्पराओं के बीच संबंध तनावपूर्ण था। बौद्ध तथा जैन परम्पराएँ एक भिन्न प्रकार की ऐतिहासिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करती थीं जिन्होंने घटनाओं और व्यक्तियों को एक अलग ही परिप्रेक्ष्य में दर्ज किया है। *श्रमण* परम्पराएँ धार्मिक मंतव्य से अलग नहीं थीं तथापि उन्होंने इतिहास, जिस प्रकार इस संबंध में उनकी दृष्टि थी, को केन्द्रीयता प्रदान करने का प्रयास किया। जैनों तथा बौद्धों के साहित्य में कुछ प्रभावी विचारों को अभिव्यक्त किया गया है। मठ/संघाराम उनकी ऐतिहासिक परम्पराओं को संरक्षित करने वाली प्रमुख संस्था थी। उन्होंने विहारों तथा मत-सम्प्रदायों की गतिविधियों के इतिवृत्तों को सुरक्षित रखा। *श्रमण* ऐतिहासिक परम्पराओं के भिन्न दृष्टिकोण के पीछे कई कारकों को उत्तरदायी माना जाता है जिनमें से कुछ हैं:

1) इन धर्मों के संस्थापकों की ऐतिहासिकता।

2) रूढ़िगत या मूल विचारों से भिन्न मतों का उदय।

3) परलोक-संबंधी सिद्धांत का महत्व।

4) संरक्षणदाताओं की सामाजिक पृष्ठभूमि। इनमें से अधिकांश कृषक या व्यापारी वर्गों से संबंध रखते थे।

5) उनकी शिक्षाओं का प्रारम्भिक नगरीय तथा साक्षर परिवेश।

6) उनके विभिन्न मत-सम्प्रदायों का पंथों के रूप में संस्थानीकरण।

7) इन भिन्न पंथों के बीच वैचारिक मतभेदों के विवरणों को सुरक्षित रखे जाने की आवश्यकता।

8) धार्मिक पंथों तथा राजनीतिक सत्ता के बीच अंतःक्रिया।

1.7 *इतिहास* तथा इसके विभिन्न स्वरूप

यह समझने के प्रयास में कि क्यों अतीत को किसी ख़ास रूपों में निर्मित, पुनर्निर्मित और निरूपित किया गया था और क्या ये किसी प्रकार की ऐतिहासिक चेतना को प्रकट करते हैं हम सार-रूप में विख्यात इतिहासकार रोमिला थापर के तर्कों का अनुसरण कर रहे हैं जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से इस विषयवस्तु के संबंध में व्यापक योगदान दिया है।

अतीत का संकेत करने वाली परम्पराएँ दो शब्दों से संबंध रखती हैं *इतिहास* तथा *पुराण*। *इतिहास* का शाब्दिक अर्थ है 'ऐसा ही हुआ' और यही है जो हम *इतिहास* से आज समझते हैं। *पुराण* का मतलब उससे है जो पुरातन है। इसमें प्राचीन समय की कहानियाँ तथा घटनाएँ शामिल हैं। प्रथम सहस्राब्दी सी ई तक इसका प्रयोग विशेष प्रकार के ग्रंथों, *पुराणों* के लिए होता था जो किसी देवता-विशेष को समर्पित होते थे। ये धार्मिक मत-पंथों के प्रमुख ग्रंथों के रूप में थे तथा किसी देवता

के साथ जुड़े मिथकों और अनुष्ठानों के विषय में जानकारी देते थे। यद्यपि इनमें कुछ ऐसे खंड भी शामिल थे जिन्हें ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के रूप में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। इन दो शब्दों, *इतिहास* तथा *पुराण*, का उल्लेख *अथर्ववेद* तथा *शतपथ ब्राह्मण* में मिलता है। *ब्राह्मणों* तथा *उपनिषदों* में इन शब्दों से उसका संकेत होता था जिसे अतीत में घटित माना जाता था। इसे पाँचवां *वेद* कहा गया था, एक द्वितीय-श्रेणी का ज्ञान जिसे दैवीय स्वीकृति तो थी किंतु यह अपौरुषेय नहीं था।

वेदों में इतिहास के अंग के रूप में *गाथा* (गीत) तथा *नरशंसी* (नायकों की प्रशंसा में रचे गए काव्य) का समावेश था। बौद्ध परम्परा में भी इतिहास का संकेत है किंतु इसके ब्राह्मणीय स्रोतों से संबंधों का संकेत किया गया है। *आदिपुराण* के नौवीं शताब्दी के लेखक जिनसेन इतिहास को परिभाषित करते हैं कि वह जो वास्तव में हुआ था। उस साहित्य का परीक्षण, जो *इतिहास-पुराण* परम्परा से संबंध रखता है, हमें यह देखने में सक्षम बनाएगा कि इतिहास को किस प्रकार निर्मित किया गया था। यह देखा गया है कि इतिहास के साथ संबंध रखने वाले ग्रंथों की शैलियों में आने वाला परिवर्तन लगभग 1000 बी सी ई से 1300 सी ई के काल में होने वाले बृहद परिवर्तनों से संबंधित था किंतु इसे सामान्यतः लगभग 1000 बी सी ई से लगभग 500 सी ई तक और दूसरा लगभग 500 सी ई से लगभग 1300 सी ई तक के दो भिन्नता दिखाने वाले कालों में बाँटकर देखा जाता है।

हम उस श्रेणी के ग्रंथों के साथ शुरू कर रहे हैं जो भारतीय उपमहाद्वीप में सर्वाधिक प्राचीन हैं – *वेद*, विशेषकर *ऋग्वेद* तथा *ब्राह्मण* ग्रंथ, नायकों के संबंध में उनके मंत्र तथा *आख्यान*। इनके कुछ खंडों को इतिहास की संज्ञा दी गई है। *पुराणों* का उदय पहली सहस्राब्दी सी ई के मध्य में एक पृथक श्रेणी के रूप में हुआ था। बहरहाल, कुछ ही पुराणों के कुछ हिस्सों को ऐतिहासिक रूप से ग्रहण किया जा सकता है।

आरम्भिक रचनाओं में ऐतिहासिक चेतना **अंतर्बद्ध स्वरूप** की है। यह आनुष्ठानिक ग्रंथों का हिस्सा है और इसके आवरणों को हटाकर देखना पड़ता है। यद्यपि ये ग्रंथ निस्संदेह आनुष्ठानिक प्रकृति के हैं, ऐतिहासिक परम्परा के कुछ अंश इनके भीतर पनपते हैं। इन अंतर्बद्ध स्वरूपों में निम्नलिखित शामिल हैं:

1) उत्पत्ति-संबंधी मिथक

2) नायकों की प्रशस्ति-संबंधी रचनाएँ

3) प्राचीन वंशीय समूहों की वंशावलियाँ

तदनंतर, बाद के काल में ये शैलियाँ स्वायत्त तथा ऐतिहासिक बन गईं या दूसरे शब्दों में, इन्होंने **मूर्तता** ग्रहण कर ली। बाद में भी ऐतिहासिक परम्पराओं को उन तरीकों और स्वरूपों में अभिव्यक्त किया जाता रहा जो इतिहास को दर्ज करने के उद्देश्य से सृजित हुई थीं और लेखक, पाठक, संरक्षणदाता तथा अवसर-विशेष के चारों ओर केंद्रीय रूप से संरचनाबद्ध थीं।

इकाई दो में हमने अंतर्बद्ध स्वरूपों पर चर्चा की है तथा उस बिंदु तक उनकी यात्रा को चिह्नित किया है जब वे क्रमिक रूप से आनुष्ठानिक ग्रंथों से मुक्त हो गए थे। आनुष्ठानिक ग्रंथों से ऐतिहासिक चेतना का क्रमिक रूप से विकास हुआ था तथा बाद में *पुराणों*, आरम्भिक अभिलेखों तथा सृजनात्मक साहित्य में इसने ऐसा रूप ग्रहण किया जिसने अतीत का निरूपण करने का दावा किया। **इकाई तीन** में बौद्ध परम्परा का अध्ययन किया गया है जहाँ यह देखने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार ऐतिहासिक रूप से यह अधिक केंद्रीय थी। जिन ग्रंथों की चर्चा की गई है वे इस प्रकार हैं :

1) बौद्ध पाली ग्रंथ जिसमें *थेरवादी* बौद्ध धर्म के आरम्भिक इतिहास का संकलन है।

2) *महाविहार* संघाराम के इतिवृत्त।

3) उत्तरी बौद्ध परम्परा से संबंधित बुद्ध की जीवनियाँ।

वे रचनाएँ, जिन्हें ऐतिहासिक रूप में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है तथा जिन्हें नई स्वतंत्र ऐतिहासिक शैलियों के रूप में देखा जाता है, की चर्चा बाद की इकाइयों में की गई है। इनमें शामिल हैं:

1) राजकीय जीवनियाँ

2) अभिलेख

3) इतिवृत्त

विभिन्न ऐतिहासिक परम्पराओं का परीक्षण यह दिखाता है कि कल्पित इतिहास के अंशों का अधिक सुपरिभाषित इतिहास पर केंद्रित विवरणों में परिवर्तन हुआ।

1.7.1 अंतर्निहित/अंतर्बद्ध इतिहास (Embedded History)

इतिहास-पुराण परम्परा की शुरुआत *ऋग्वेद* की *दानस्तुति* ऋचाओं, *नरशंसियों* और *आख्यानों* तक पीछे जाती है जहाँ इन्हें यज्ञ के अनुष्ठानों के हिस्से के रूप में शामिल किया गया था। ये *आख्यान ऋग्वेद* में विभिन्न उदार संरक्षणदाताओं की प्रशंसा में रचे गए मंत्रों (*दानस्तुति*) और आख्यानों (*नरशंसी और आख्यान*) के रूप में थे। इन आख्यानों के माध्यम से वर्तमान के किसी कृत्य के लिए अतीत में पूर्वोदाहरण को स्थापित किया गया। बाद के काल में इन रूपों को महाकाव्यों – *महाभारत* तथा *रामायण* – में शामिल किया गया। यद्यपि इनके समावेशन ने इनके स्वरूप में परिवर्तन ला दिया था। महाकाव्यों में वंशावलियों ने *वेदों* की अपेक्षा एक अधिक गहरा स्वरूप ग्रहण किया। आरंभिक *पुराणों* के वंशावली वाले खंड – *वंशानुचरित* – को पीढ़ीगत उत्तराधिकार की क्रमबद्ध सूचियों के रूप में और अधिक विस्तार दिया गया। इसे सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों में लिखित स्वरूप प्रदान किया गया। 'इस प्रकार यह पुराने समयों का संकेत करने वाले अतीत के निर्माण का निरूपण करता है और पहले की ऐतिहासिक सामग्री पर आधारित था'।

इन अंतर्बद्ध रूपों का क्रमिक रूप से *वंशावलियों* के रूप में विकास हुआ और सातवीं शताब्दी सी ई के बाद के काल में अधिक प्रत्यक्ष ऐतिहासिक ग्रंथों जैसे *चरित* (जीवन-चरित) और *वंशावलियों* (इतिवृत्त-लेखन) में इनका प्रयोग हुआ।

1.7.2 इतिहास के मूर्त रूप (Externalised Historical Forms)

शासकों या सत्ताधारी व्यक्तियों की जीवनियाँ या जीवन-चरित, इतिवृत्त, अभिलेख उन पाठों में शामिल हैं जो पुराने या पहले के पाठों से भिन्न थे। अभिलेख न केवल कालक्रम, वंशीय इतिहास और आर्थिक परिवर्तन के विषय में जानकारी देते हैं बल्कि ऐतिहासिक चेतना का प्रत्यक्ष स्वरूप भी प्रस्तुत करते हैं। पुराने समय के कई स्वतंत्र रूप से उत्कीर्ण अभिलेख तथा पुरातात्विक अवशेष पुनः प्रयोग में लाए गए थे। इससे सामने प्रस्तुत होने वाले ये प्रश्न प्रासंगिक हैंः क्यों कुछ वस्तुओं को चुना गया था? वह क्या अर्थ संप्रेषित करते हैं? रोमिला थापर के अनुसार 'पुनर्प्रयोग अतीत की विरासत को संजोने तथा वर्तमान समय के लिए इसे अनुवादित करने का कृत्य है' (थापर 2013ः 61)।

श्रीलंका के बौद्ध विहारों के इतिवृत्त जैसे *दीपवंश* तथा *महावंश* प्रथम सहस्राब्दी सी ई के मध्य से हमें भारत के इतिहास तथा श्रीलंका में बौद्ध धर्म के आगमन के बीच एक अंतर्संबंध स्थापित करते हुए बौद्ध धर्म के आरंभिक इतिहास के विषय में बताते हैं। इसमें अशोक को मुख्य भूमिका निभाते हुए देखा जाता है। उत्तरी बौद्ध परम्परा के *महायान* मत में *अवदान* ग्रंथ व शासकों तथा आचार्यों की जीवनियाँ भारतीय इतिहास के निरूपण का एक अधिक स्पष्ट साक्ष्य देती हैं। इनमें से *अशोकावदान* में हमें मौर्य शासक अशोक की गतिविधियों के बारे में सूचना मिलती है, किंतु बौद्ध धर्म की उत्तरी परम्परा के दृष्टिकोण से।

ऐतिहासिक लेखनियाँ – जो अब आनुष्ठानिक ग्रंथों में अंतर्बद्ध नहीं रह गई थीं – गुप्तोत्तर काल में हमारे समक्ष प्रकट होती हैं। ये तीन स्वरूपों में नज़र आती हैंः *चरित, प्रशस्तियाँ* और *वंशावलियाँ*। *चरितों* को काव्य के रूप में लिखा गया था और ये ऐतिहासिक जीवनियाँ थीं। इनमें ऐतिहासिक विचारों को समाहित किया गया था। बाणभट्ट की *हर्षचरित* इनमें सबसे प्रभावी थी। इसमें सातवीं शताब्दी सी ई के ऐतिहासिक लोकाचारों को ग्रहण किया गया है। संध्याकर नंदिन की *रामचरित*, जो इससे कुछ बाद के काल की है, भूमि-धारी मध्यस्थ वर्ग द्वारा किए गए विद्रोह पर एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

सातवीं शताब्दी के बाद के काल में हमें ऐसे अभिलेख उपलब्ध हैं जिन्हें वंशानुगत इतिवृत्तों के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। ये किसी वंश को कालानुक्रमिक रूप से सूचीबद्ध करते हैं और घटनाओं के संबंध में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इन अभिलेखों के *प्रशस्ति* वाले खंड में राजवंश के संबंध

में ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध रहती है। सार-रूप में ये राजाओं तथा उनकी उपलब्धियों का प्रशस्तिपूर्ण वर्णन करते हैं।

वंशावलियाँ एक ऐसी ऐतिहासिक परम्परा का निर्माण करती हैं जिसमें ऐतिहासिक घटनाएँ केंद्रीय स्थान रखती हैं। कल्हण की *राजतरंगिणी* इस प्रकार का सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण है।

1.8 ऐतिहासिक परम्पराओं के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संदर्भ

ऐतिहासिक परम्पराएँ अपने संदर्भों के अनुसार आकार ग्रहण करती हैं। सत्ता और संसाधनों के संस्थानीकरण में समय के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों की बहुत सी प्रक्रियाओं ने इन परिवर्तनों को वैधता प्रदान करने वाले तरीकों को प्रभावित किया। ऐतिहासिक परम्पराओं को विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों में घटित होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखकर जाना जा सकता है। ऐतिहासिक संदर्भों तथा घटित हुए परिवर्तनों को समझने के हमारे इस प्रयास में इसकी पृष्ठभूमि को समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्रारंभिक भारत में सामाजिक संगठन के दो रूपों का साक्ष्य मिलता है। प्रारंभिक काल में वंश-समाजों का उदय हुआ जिनका बाद में राज्य-समाज ने अनुकरण किया। पहले हम इन दोनों संगठनों, वंश-समाज (clan society) तथा राजव्यवस्था के विषय में जानने का प्रयास करते हैं। एक वंश-समाज में पहचान किसी वंश या कुटुंब से उत्पन्न होती है। वंश का तात्पर्य एकल पूर्वज से उत्पन्न पीढ़ीगत सह-संबंधित समूह से है जो किसी वास्तविक या काल्पनिक वंशावली द्वारा परिभाषित होता है। एक ही वंश/कुल से संबंध रखने वाले व्यक्ति अपनी पहचान को एक समान पूर्वज से जोड़ते हैं। इसमें नातेदारी सामाजिक बंधनों के केंद्र में होती है तथा समाज के भीतर विभिन्न प्रकार्यों को नियंत्रित करती है। कल्पनापूर्ण या वास्तविक वंशावलियाँ इस संबंध में महत्वपूर्ण होती थीं तथा उन्हें राजवंश के बखान में जगह दी जाती थी।

वंशावलियाँ वर्तमान तथा अतीत दोनों की पहचान के बखान को समाहित करती थीं। वंश-संबंधी मिथकों के साथ ही *वंशावलियाँ* किसी वंश-समाज की प्रक्रियाओं, परस्पर मिश्रण और विखंडन को दर्ज करती थीं। जब एक वृहद् वंश छोटी-छोटी वंश-शाखाओं में टूटता था तो उनमें से कुछ नए स्थानों की ओर प्रवास कर जाते थे। इसे विखंडन कहते हैं। मिश्रण तब होता है जब कुछ वंश आपस में मिलकर एक बड़ा वंशीय समूह निर्मित करते हैं। रोमिला थापर का यह तर्क है कि वंशों को पदसोपान क्रम में व्यवस्थित किया गया था और यह व्यवस्था, आवश्यकता होने पर, इस तरह व्यवस्थित किए जाने के बाद के समय में भी वंशावलीय या अन्य रूपों में अंकित या नए सिरे से सूत्रबद्ध की जा सकती थी। इस पदसोपान के कारण कुछ वंश संसाधनों तक पहुँच रखने के संबंध में बेहतर स्थिति में थे (थापर 2013: 67)। वंश-आधारित समाजों ने सामान्यतः अपने अतीत के नायकों और घटनाओं को अंकित किया था। भारत के आरम्भिक कृषिगत-चरवाहे समाज मवेशियों को महत्वपूर्ण संपत्ति मानते थे। यद्यपि थोड़ी-बहुत खेती उनके निर्वाह की रणनीति का हिस्सा थी। उपज को सत्ताधारी कुलों को आनुष्ठानिक रूप से भेंट में दिया जाता था। सम्पत्ति मुखिया को अर्पित भेंट *शुल्क* और *बलि* के रूप में थी। इस उत्पाद का अधिकांश अनुष्ठान के दौरान उपयोग में आ जाता था तथा अनुष्ठान का निष्पादन करने वाले को प्रदान किया जाता था। पुरोहित मुखिया की प्रतिष्ठा को वैधता प्रदान करते थे तथा बदले में मुखिया से भौतिक उपहारों को प्राप्त करते थे। जब समय के साथ वंशों का महत्व बढ़ा तब अनुष्ठान विशेषज्ञों का एक विशेष समूह उदित हुआ। इनमें से कुछ अतीत से सम्बंधित परम्पराओं को कंठस्थ करने तथा विशेष अवसरों पर उनका बखान करने में संलग्न थे। ये सूत/भाट/चारण या कवियों के वर्ग रहे होंगे।

मुखिया के पास सत्ता थी और पुरोहित द्वारा उसकी नायक के रूप में प्रशंसा की जाती थी। यही वह संदर्भ था जिसमें नायक-प्रशंसा (*नराशंसी*) और गाथाओं ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। ये कविताएँ अपनी लम्बाई में लघु आकार की थीं तथा इनका लक्ष्य मुखिया के महत्व को बढ़ाना था। इन मंत्रों का वंश-संबंधियों की सभा में बखान किया जाता था और ये उस वंश-विशेष की पहचान को दोहराते थे। *नराशंसियाँ* उस मुखिया तथा उसके वंश दोनों के लिए महत्व रखती थीं।

वंश-समाजों के कई प्रकार थे। इनमें *गण-संघ/गण-राज्य* – कुल-वंश या कुल-वंशों की सभाएँ –

आरंभिक उत्तर भारतीय समाज में कुलीनतंत्र और कुल प्रमुखों के शासनतंत्र थे। इस प्रकार के समाज *वेदों* तथा *महाभारत* में पाए जाने वाले समाजों की अपेक्षा अधिक जटिल थे। पाली में रचित बौद्ध *त्रिपिटक* इन समाजों के विषय में विस्तार से बताते हैं तथा बुद्ध ऐसे ही एक *गण-संघ* शाक्य से संबंध रखते थे। धीरे-धीरे इनमें से कुछ राजव्यवस्थाओं में बदल रहे थे और इनके नियंत्रण, प्राधिकार तथा शक्ति के स्वरूप के संबंध में उपस्थित तनावपूर्ण स्थिति का *महाभारत* तथा *रामायण* में वर्णन है।

प्रथम सहस्राब्दी बी सी ई के मध्य तक मध्य गंगा के मैदानों में राजतंत्र का उदय हो चुका था। दलपति या मुखिया संपत्ति के संग्रहण के माध्यम से, जिसे अब उपहार और यज्ञ में खर्च नहीं किया जाता था, शक्तिशाली बन चुका था। कृषि और लौह प्रौद्योगिकी के विस्तार ने अधिशेष के उदय और नगरीकरण की शुरुआत को जन्म दिया। *जाति* अब समाज में पदसोपानक्रम को विनियमित करने लगी तथा *शूद्र* व अस्पृश्य श्रमिक वर्गों में बदल गए। यह सामाजिक संगठन अधिक जटिल स्वरूप धारण कर चुका था तथा इसे एक केंद्रीय शक्ति द्वारा शासित किए जाने की आवश्यकता थी। राजतंत्र का उदय हुआ और धीरे-धीरे यह एक प्रचलित व्यवस्था बन गया। राजा अब राज्य को प्रतिबिंबित करने लगा। राजतंत्र के उदय के साथ वंश-समाज हाशिए में चला गया। जब राजतंत्रों का उदय हआ उन्होंने *गण-संघों* के प्रति विरोध का रवैया दिखाया। पाँचवीं शताब्दी बी सी ई में उत्तरी भारत में वृज्जि – *गण-संघ* कुलों का एक संघ – मगध के शक्तिशाली राज्य के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था। इस शत्रुता का उल्लेख *अर्थशास्त्र* में भी मिलता है।

वंश-समाजों से भिन्न राजतंत्र अपने संसाधनों को नियमित करों से प्राप्त करते थे और भूमि का सामूहिक स्वामित्व अब प्रचलित नहीं रह गया था। जैसे-जैसे इन परिवर्तनों ने और गति पकड़ी हमें गुप्त काल तक मध्यस्थों का उदय देखने को मिलता है जो राज्य के प्राधिकार और शासन की जटिलता में गुणात्मक और मात्रात्मक परिवर्तनों की ओर संकेत करता है। गुप्तोत्तर काल में *ब्राह्मणों* को भूमि के अनुदान दिए गए जिन्हें राजा की सत्ता को वैधता प्रदान करने के बदले ये उपहार में दिए गए थे। जल्द ही, न केवल *ब्राह्मण* बल्कि धार्मिक संस्थानों और प्रशासकों को भी इस प्रकार भूमि के अनुदान दिए जाने लगे। इसका परिणाम कृषकों और राजाओं के बीच एक मध्यस्थ वर्ग के उदय में निकला। अब वे उस राजस्व को पा रहे थे जो पहले राजा प्राप्त करता था। मध्यस्थों में से अधिक शक्तिशाली स्वयं को संभावित राजाओं के रूप में देखते थे तथा एक-दूसरे के साथ सिंहासन हेतु प्रतिस्पर्धा करते थे। 'इन संबंधों और दावों की स्थापना करने में शासन की वैधता सिद्ध करने के उद्देश्य से प्राचीन ऐतिहासिक परम्पराओं का सहारा लिया गया' (थापर 2013: 73)।

वंश-समाजों का अपेक्षाकृत समतापूर्ण समाज अब स्तरीकृत जटिल समाज में रूपांतरित हो चुका था। अब राजनीतिक सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धा पहले की अपेक्षा अधिक खुली हुई थी। मिथकीय उत्पत्ति तथा वंश-संबंधों ने वैधता प्राप्त करने में सहायता प्रदान की। अतीत-संबंधी आख्यानों पर नियंत्रण रखना उपयोगी बन गया था। ये ऐतिहासिक परम्पराएँ उन परिवर्तनों को अंकित करती हैं जिनके माध्यम से गुप्तोत्तर काल में राज्य स्वयं को विस्तारित कर रहे थे। नए क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की जा रही थी तथा उन्हें अधिग्रहित किया जा रहा था। वंश-समाजों का रूपांतरण *जाति*-आधारित समाज में हो रहा था तथा उन्हें राज्य-समाज (state-society) में समाहित किया जा रहा था। विभिन्न प्रकार के समाज, जैसे आखेटक-संग्राहक, वनवासी, चरवाहे, स्थानांतरित कृषि में लगे हुए किसान व अन्य किसान समूह, अब *जाति* व्यवस्था में आत्मसात कर लिए गए थे। यह ऐतिहासिक परम्परा उन परिवर्तनों को भी दर्ज करती है जहाँ राज्य तथा समाज (जिन्हें उनके संसाधनों के अधिग्रहण और उनके *जाति* में रूपांतरण के माध्यम से आत्मसात किया जाना था) एक-दूसरे के साथ तनाव में थे, यद्यपि इन ग्रंथों या पाठों में इसका साक्ष्य बहुत प्रत्यक्ष नहीं है।

इन प्रक्रियाओं में विचारधारा ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। सामान्यतः एक प्रभुत्वशाली विचारधारा, जो अक्सर किसी धार्मिक संप्रदाय से संबंध रखती थी, का बलपूर्वक उपयोग किया गया। यह अतीत की उन कुछ निर्मितियों और निरूपणों में झलकता है जिनका उद्देश्य ऐसी सत्ता को वैधता प्रदान करना था जो या तो पहले से ही स्थापित हो चुकी थीं या स्थापित होने के निकट थीं। अतीत का निर्माण एक क्रमिक प्रक्रिया है और वंश-आधारित समाजों का राजतंत्रों में रूपांतरण दूसरी सहस्राब्दी सी ई के बाद के कालों में भी चलता रहा। इस समय तक राजतंत्र एक सामान्य नियम बन चुके थे और वंश-समाज केवल अधिक सुदूर क्षेत्रों में ही अस्तित्व में रह गए थे।

1.9 विचारधारात्मक चिंतन

ऐतिहासिक चेतना उस रूप में अभिव्यक्त होती है जिस रूप में समाज अपने अतीत को प्रस्तुत करना और देखना चाहते हैं। यह सभी समाजों की एक अन्तर्भूत विशेषता है। आरंभिक रूप से यह अंतर्बद्ध रूप में प्रकट हो सकती है, जैसा कि *ऋग्वेद* की नायक-प्रशस्तियों से सुस्पष्ट होता है। यहाँ अतीत अनुष्ठानिक ग्रंथों में अंतर्बद्ध है, इसके विपरीत बौद्ध तथा जैन इतिहासलेखन में संघाराम के भिक्षुओं से जुड़ी घटनाएँ और ***संघ*** का इतिहास महत्वपूर्ण हो जाता है। ये शासकों और शक्तिशाली संरक्षणदाताओं के इतिहास से सह-संबंधित हैं और इतिहास को एक भिन्न प्रकार की परम्परा की शक्तिशाली अभिव्यक्ति बनाते हैं। गुप्तोत्तर काल के ग्रंथ, जो ऐतिहासिक लेखन से संबंधित हैं, जैसे अभिलेख, *चरित*-साहित्य तथा इतिवृत्त, भी इसी पैटर्न का अनुकरण करते हैं।

इन ग्रंथों में रेखांकित किया गया है कि किस प्रकार इन ग्रंथों के लेखक उस पर टिप्पणी कर रहे थे जिस पर वे अतीत के रूप में विश्वास करते थे। अतीत और इसका उस काल के साथ अंतर्संबंध, जिसमें ग्रंथों को रचा गया, भी अध्ययन हेतु एक महत्वपूर्ण पहलू है। रोमिला थापर का तर्क है कि अंतर्बद्ध परम्परा में *आख्यानों* का प्रेक्षपकों (interpolations) के माध्यम से एक से अधिक बार अद्यतन (update) किया जाता था। जब विशेष ऐतिहासिक लेखनों का उदय हुआ इन पाठों का अद्यतन करने या उनमें बदलाव करने की ज़रूरत नहीं रह गई थी। ये पाठ अब किसी धार्मिक परम्परा से जुड़े नहीं रह गए थे तथा पुराने ग्रंथों की पुष्टि या खंडन हेतु नए पाठों का आवश्यकतानुसार सृजन किया जा सकता था।

यह जान लेना चाहिए कि जहाँ पहचानों/सर्वसामिकाओं (identities) का अंकन करने वाले पाठों की खोज की जा रही थी वहाँ एक से अधिक ऐतिहासिक परम्पराओं के अस्तित्व हो सकते थे। किसी समाज के अतीत-संबंधी दृष्टिकोण के कई रूप हो सकते हैं जो समय के साथ-साथ बदलते रहते हैं। किसी समाज में ऐतिहासिक चेतना अर्थपूर्ण स्थान रखती है तथा सामाजिक संस्कृति को समझने हेतु प्रासंगिक होती है। अतीत की वे घटनाएँ किसी समाज के लिए प्रासंगिक होती हैं जिनसे वह सचेत रूप से परिचित होता है। 'ये वैसा रूप ग्रहण करती हैं जो किसी समाज की आवश्यकता की पूर्ति करता है। यह रूप उस समाज की बौद्धिक तथा सामाजिक परिकल्पनाओं पर आधारित होता है – जिसमें उस आलेख (record) का सामाजिक उद्देश्य और अतीत की समझ के संदर्भ में उस समाज के विचारधारात्मक सरोकार शामिल होते हैं' (थापर 2013: 84)। व्यापक अर्थ में इसी रूप में इस इकाई को तैयार किया गया है।

बोध प्रश्न-2

1) इतिहास के मूर्त (externalised) तथा अंतर्निहित (embedded) रूप क्या हैं? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

....

....

....

2) ऐतिहासिक परम्पराओं के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संदर्भ क्या थे? किस प्रकार इन संदर्भों ने उन्हें आकार प्रदान किया?

....

....

....

1.10 सारांश

इस इकाई में हमने उन रूपों के विषय में पढ़ा जो भारत में ऐतिहासिक परम्परा ने ग्रहण किए। यहाँ मुख्य सरोकार था यह जाँच करना कि कैसे प्रारंभिक लेखकों ने अपने बीते हुए अतीत को देखा। लगभग 1000 बी सी ई से लगभग 1300 सी ई के काल में ऐतिहासिक चेतना और विभिन्न ग्रंथों में उसकी अभिव्यक्ति इस इकाई की विषयवस्तु रही है।

प्रारंभिक भारत में तीन मुख्य ऐतिहासिक परम्पराएँ मौजूद रहीं: *इतिहास-पुराण* परम्परा जिसका श्रेय *ब्राह्मणों* को दिया जाता था जो शासन करने वालों के विषय में लिख रहे थे। एक भिन्न नज़रिया चारणों की रचनाओं से सामने आता है। उनकी रचनाओं का ब्राह्मण लेखकों द्वारा पुनर्लेखन किए जाने का विश्वास किया जाता है जो इनके मूल रूप की पुनर्प्राप्ति मुश्किल बनाता है। तीसरी प्रकार की परम्परा *श्रमण* परम्परा है जिसमें शासकों के इतिहास को बौद्ध तथा जैन *संघों* की शिक्षाओं के इतिहास में समाहित किया गया था। इस इकाई में हमने ऐतिहासिक चेतना और विभिन्न शैलियों में किए गए अतीत के निरूपण के रूप में इसके सूत्रीकरण की पहचान की है।

1.11 शब्दावली

संघ : बौद्ध अनुयायियों का संगठन जो परम्परागत रूप से चार समूहों से मिलकर बना हुआ था: भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका। यह बुद्ध तथा धर्म (बुद्ध की शिक्षाएँ) के साथ बौद्ध धर्म के आधारभूत *त्रिरत्नों* का निर्माण करता था

चरित : जीवनीपरक साहित्य

वंशावलियाँ : एक प्रकार की शैली जो किसी राज्य-क्षेत्र या राजवंश का इतिवृत्त होता था

इतिहास का अंतर्बद्ध रूप : *दानस्तुतियों, गाथाओं* तथा *नरशंसियों* के रूप में इतिहास जो प्राचीन भारतीय समाज के साहित्य में गुंथा हुआ था

इतिहास का मूर्त रूप : इसके उदाहरणों में *चरित* और *वंशावलियाँ* शामिल हैं जो उन ग्रंथों से अपेक्षाकृत स्वतंत्र थीं जिनमें उन्हें स्थान दिया गया था

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 1.2

2) देखें भाग 1.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 1.7 व इसके उप-भाग

2) देखें भाग 1.8

1.13 संदर्भ ग्रंथ

ट्रॉटमैन, टॉमस आर., (2012) 'डज़ इंडिया हैव हिस्ट्री? डज़ हिस्ट्री हैव इंडिया?', *कम्पैरटिव स्टडीज़ इन सोसायटी एंड हिस्ट्री,* संस्करण 54, संख्या 1, पृ. 174-205.

थापर, रोमिला, (2013) *द पास्ट बिफ़ोर असः हिस्टौरिकल ट्रडिशंज़ ऑफ़ अर्ली नॉर्थ इंडिया* (नई दिल्ली, अशोक विश्वविद्यालयः परमानेंट ब्लैक).

1.14 शैक्षणिक वीडियो

कनवरसेशन्स विद इंडियाज़ पास्ट

https://www.youtube.com/watch?v=Wsu1Jc3y_sM

इंडियाज़ पास्ट एंड प्रैज़ैटः हाउ हिस्ट्री इंफॉर्म्स कंटैम्पोररी नैरेटिव

https://www.youtube.com/watch?v=J8HhLJzpx3Y

द पास्ट बिफ़ोर असः हिस्टौरिकल ट्रडिशंज़ ऑफ़ अर्ली नॉर्थ इंडिया

https://www.youtube.com/watch?v=V3rR_x24S64